Mizoram University Journal of Humanities & Social Sciences
(A National Refereed Bi-Annual Journal) Vol II Issue 2, December 2016 ISSN: 2395-7352

टी. एस. इलियट की परंपरा एवं निर्वैयक्तिकता की अवधारणा

वंदना भारती*

शोध-पत्र सार

इस शोध-पत्र में, टी. एस. इलियट की परंपरा एवं निर्वैयक्तिकताकी अवधारणा पर विचार किया गया है। इलियट ने स्पष्ट किया की 'परंपरा' का अर्थ रूढ़ि या अंधानुकरण नहीं है वरन पूर्ववर्ती इतिहास- बोध है। परंपरा अविछिन्न धारा है जो जातीय जीवन, साहित्य, कला और दर्शन के उत्कृष्ट अंशों को सन्निविष्ट करती जाती है। बिना इस परंपरा को जाने और बिना आधार बनाए कोई कवि सफल कृति नहीं दे सकता। यदि परंपरा को भुलाकर कवि केवल अपने दुख- दर्द की गाथा लिखता है, तो वह कविता के महत्तर उद्देश्य से च्युत हो जाता है। भारत के संदर्भ में तुलसीदास और जयशंकर प्रसाद ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने पूर्ववर्ती परंपरा को आत्मसात किया और श्रेष्ठ कृति का प्रणयन किया। तुलसी ने यदि "नानापुराणनिगमागमसम्मत" की बात की, तो कामायनी में भी प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक की भारतीय मनीषा का उत्तमांश प्रतिफलित है। जहाँ तक निर्वैयक्तिकता की अवधारणा की बात है, इलियट कहते हैं कि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का प्रश्न बेमानी है क्योंकि उसे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करनी ही नहीं है, वह तो अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र है। संभव है कि कवि के जीवन में जो संस्कार और अनुभूतियाँ महत्वपूर्ण हों उनका काव्य में कोई स्थान ही न हो और जो काव्य के लिए महत्वपूर्ण हो वे कवि जीवन में बिल्कुल तुच्छ हों।

बीज शब्द: परंपरा, आत्मसमर्पण, निर्वैयक्तिकता, अभिव्यक्ति

परंपरा की अवधारणा

परंपरा से विछिन्न जीवन बेजड़ अमरबेल की तरह सब दिन पीला रहता है। जड़ के अभाव में अमरबेल पर्याप्त जीवन-रस ग्रहण नहीं कर पाती है। फलस्वरूप, दौर्बल्यसूचक

*डॉ. वंदना भारती, हिंदी अधिकारी,मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल, मिज़ोरम

पीलीमा उसकी संगिनी बन जाती है। "परंपरा की पौध सदैव द्विबीजपत्री होती है जिसके एक भाग से मूलांकुर तथा दूसरे से प्रांकुर का विकास होता है। मूलांकुर अधोमुखी, भूमिगत और पौधे को टिके रहने के लिए आधार का काम करता है जबकि प्रांकुर ऊर्ध्वगामी, आकाशधर्मी और पौधे को विस्तार प्रदान करता है।.. परंपरा को मूलांकुर की खोज-खबर लेना ही जड़ों की ओर लौटना है। हर परंपरा की अलग पौध होती है और यह पौध जिस मिट्टी में उगती है, वह है संस्कृति। यदि परंपरा के पौध की एक ही प्रजाति चतुर्दिक छाई हो तो उससे बांस की खूंटी तो तैयार हो सकती है, लेकिन उद्यान नहीं।"[1]

परंपरावादी सिद्धान्त पर गौर करें तो हम पाते हैं कि व्यक्ति साहित्यकार परंपरा के प्रति अनवरत रूप से आत्मसमर्पित रहता है। आत्मसमर्पण के इसी भाव के अधीन इलियट ने अवैयक्तिक काव्य-सिद्धान्त (इंपर्सनल थ्योरी ऑफ पोएट्री) का प्रतिपादन 'ट्रेडीशन एंड इंडिविडुअल टैलेंट' (1920) नामक निबंध में किया है। इस लेख का उद्देश्य ही था रोमांटिक संप्रदाय की व्यक्तिवादिता के बदले परंपरा का महत्व स्थापित करना और परंपरा के अंतर्गत ही वैयक्तिक प्रज्ञा की सार्थकता प्रदर्शित करना। इलियट ने स्पष्ट किया की 'परंपरा' का अर्थ रूढ़ि या अंधानुकरण नहीं है वरन पूर्ववर्ती इतिहास - बोध है। परंपरा अविछिन्न धारा है जो जातीय जीवन, साहित्य, कला और दर्शन के उत्कृष्ट अंशों को सन्निविष्ट करती जाती है। बिना इस परंपरा को जाने और बिना आधार बनाए कोई कवि सफल कृति नहीं दे सकता। यदि परंपरा को भुलाकर कवि केवल अपने दुख-दर्द की गाथा लिखता है, तो वह कविता के महत्तर उद्देश्य से च्युत हो जाता है। यह परंपरा या इतिहास-बोध सहज प्राप्त नहीं हो जाता है। इलियट कहते हैं- "ट्रेडिसन इज अ मैटर औफ मच वाईडर सिग्निफिकेन्स, ईट कैन नौट बी इन्हेरीटेड, एंड इफ यू वांट यू मस्ट ओबटेन इट बाय ग्रेट लेबर।"[2]

जहाँ तक वैयक्तिक प्रज्ञा का प्रश्न है, तो इलियट इसे परंपरा से विछिन्न नहीं मानते हैं। उनका मानना है कि परंपरा से जुड़ा रहकर ही कवि वैयक्तिक क्षमता को अधिक सफलतापूर्वक उजागर कर सकता है। किसी कवि की रचना में सर्वाधिक सशक्त अंश वही होता है, जिनमें पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव जोरदार ढंग से व्यक्त हुआ होता है। जिस कवि ने परंपरा को जितना आत्मसात किया, जिसका इतिहास-बोध जितना गहन है उसी कवि ने

अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की और श्रेष्ठ कृति को जन्म दिया है। भारत के संदर्भ में तुलसीदास और जयशंकर प्रसाद ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने पूर्ववर्ती परंपरा को आत्मसात किया और श्रेष्ठ कृति का प्रणयन किया। तुलसी ने यदि "नानापुराणनिगमागमसम्मत" की बात की, तो कामायनी में भी प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक की भारतीय मनीषा का उत्तमांश प्रतिफलित है। लेकिन इसके साथ ही इलियट ने हिदायत भी दी है कि कभी-कभी ज्ञान से आक्रांत होने पर काव्य संवेदना कुंद पड़ जाती है। कवि के लिए अतीत की चेतना को विकसित करना अनिवार्य है साथ ही उसकी प्रगति आत्मोत्सर्ग है। "द प्रोग्रैस ऑफ एन आर्टिस्ट इज ए कॉटीनुअल सेल्फ सैकृफाईस, ए कॉटीनुअल एक्सटिनसन ऑफ पर्स्नालिटी।"[3]

इलियट मानते हैं कि किसी कवि या कलाकार की पूर्ण सार्थकता पूर्ववर्ती और समकालीन कवियों-कलाकारों की सापेक्षता में ही होती है। जब भी किसी नई कलाकृति की सृष्टिहोती है, पूर्ववर्ती सभी कृतियों का कुछ न कुछ सामंजन अनिवार्य हो जाता है। जिस प्रकार रेल के डब्बे में किसी नए यात्री के आने पर पहले से बैठे यात्रियों को खिसककर जगह बनानी पड़ती है वैसे ही जब कोई नयी कृति आती है, तो पूर्ववर्ती कृतियों के स्थान में कमोबेश परिवर्तन होता है- किसी का मूल्य घटता है; तो किसी का बढ़ता है। जिस प्रकार इतिहास वर्तमान को निर्देशित करता है, उसी प्रकार वर्तमान भी अतीत को निर्देशित करता है- "द पास्ट शुड बी अटेस्टेड बाय द प्रजेंट एज़ मच एज़ द प्रेजेंट इज डायरेक्टेड बाय द पास्ट।"[4]

अतः इलियट के विचारों के आलोक में कहा जा सकता है कि परंपरा अतीत से वर्तमान तक एक अविछिन्न इकाई है, जिसमें किसी जातीय जीवन की कला, संस्कृति और दर्शन का ऊत्तमांश विद्यमान होता है। वैयक्तिक प्रज्ञा इस परंपरा से संयुत होकर ही श्रेष्ठ कृति का प्रणयन कर सकती है। काव्य में व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं होती वरन परंपरा की ही अभिव्यंजना नए रूप में होती है। उन्होंने स्वीकार किया है कि व्यक्तित्व का अतिक्रमण न कवि के लिए संभव है और न आलोचक के लिए। "पोएट्री इज नॉट ए टर्निंग लूज ऑफ इमोशन बट एन इस्केप फ्रोम इमोशन;इट इज नॉट द एक्स्प्रेशन ऑफ पर्स्नालिटी; बट एन इस्केप फ्रोम पर्स्नालिटी। बट ऑफ कोर्स, ओनली दोज़ हू हैव पर्स्नालिटी एंड इमोशन्स नो व्हाट इट मीन्स टू वांट टू इस्केप फ्रोम दीज़ थिंग्स।"[5]

निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत

इलियट ने 'ट्रेडिशन एंड दि इंडिविजुअल टैलेंट' शीर्षक निबंध के उत्तरार्द्ध में निर्वैयक्तिकता पर विचार किया है। इस पर एजरा पाउंड का प्रभाव दृष्टिगत होता है। एजरा पाउंड ने माना था कि कवि वैज्ञानिक के समान ही निर्वैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ होता है। इलियट परंपरा को आवश्यक मानते हैं जो वैयक्तिकता की विरोधी है। वह साहित्य के जीवंत विकास के लिए परंपरा का योग स्वीकार करते हैं, जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ तत्व नियंत्रित हो जाता है और वस्तुनिष्ठ तत्व प्रधान हो जाता है।

साहित्य के रोमांटिक दौर में कविता 'भावों की अन्तःस्फूर्त अभिव्यक्ति' थी। इलियट ने इसका विरोध करते हुए घोषणा की- "वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से पलायन है।" लेकिन उनका विरोध व्यक्तित्व की सत्ता का निषेध नहीं है वरन रोमांटिक कविताओं की वैयक्तिकताकी अतिशयता का निषेध है। बाद में उनके विचारों में पर्याप्त परिवर्तन हुए। इलियट कवि को सर्जक नहीं माध्यम मानते हैं। जिस प्रकार सल्फ्यूरिक ऐसिड के निर्माण में प्लैटिनम उत्प्रेरक का काम करता है, लेकिन प्रतिक्रिया में भाग नहीं लेता उसी प्रकार कवि के संपर्क से विभिन्न अनुभूतियाँ, संवेदन या भाव नए से नए रूप ग्रहण किया करते हैं, किन्तु वह स्वयं उनसे सर्वथा अप्रभावित रहता है। स्वानुभूत संवेदन और भाव सर्वथा भिन्न होते हैं, क्योंकि कवि स्वानुभूत भावों को पूर्णतः आत्मसात करके नए रूप में ढाल देता है। कवि जितना उत्कृष्ठ होगा उसमें भोक्ता और स्रष्टा का अंतर उतना ही स्पष्ट होगा।

इलियट मानते हैं कि कवि का मन ऐसा पात्र है जिसमें संवेदन, वाक्य-खंड, बिम्ब आदि सिंचित रहते हैं। सर्जना के क्षण में ये अपना स्वरूप त्यागकर और नए रूपों में संयोजित होकर कला का विग्रह धारण कर लेते हैं। इलियट की धारणा है कि काव्य में भावों की तीव्रता का महत्व नहीं होता वरन कलात्मक प्रक्रिया की तीव्रता का महत्व होता है, जिसमें विभिन्न भावों का संयोजन या विलयन होता है और वे घुलमिलकर एक हो जाते हैं। चूंकि इलियट भावों के स्वरूप में पूर्ण परिवर्तन स्वीकार करते हैं इसलिए वे सामान्य किसी भी अनुभूति से कलात्मक अनुभूति को विशिष्ट मानते हैं।

इलियट कहते हैं कि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का प्रश्न बेमानी है क्योंकि उसे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करनी ही नहीं है, वह तो अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र है। संभव है कि कवि के जीवन में जो संस्कार और अनुभूतियाँ महत्वपूर्ण हों उनका काव्य में कोई स्थान ही न हो और जो काव्य के लिए महत्वपूर्ण हो वे कवि जीवन में बिल्कुल तुच्छ हों। भावों का अनुभव की राह से गुजर कर आना जरूरी नहीं है। कवि के भाव बहुत जटिल होते हैं। इलियट की स्पष्ट मान्यता है कि "कवि का काम नए भावों को ढूँढना नहीं, अपितु साधारण भावों का उपयोग करके, काव्य- रूप देने की प्रक्रिया में उनसे ऐसे संवेदनों को व्यक्त करना है जो वास्तविक भावों में विद्यमान थे ही नहीं।"[6]

बहुधा इलियट की निर्वैयक्तिकता को व्यक्तित्व से पूर्णतः विच्छिन्न मान लिया जाता है, लेकिन जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं इलियटवैयक्तिकता का निषेध नहीं करते वरन वस्तुनिष्ठता को प्रमुखता देते हैं। इलियट के लिए वैयक्तिकता का बस इतना ही मतलब है- वस्तुनिष्ठता के प्रति समर्पण। वैसे 'द यूज ऑफ पोएट्री एंड दी यूज ऑफ क्रिटिसीज्म' में उन्होंने स्वीकार किया ही है कि 'व्यक्तित्व का अतिक्रमण न कवि के लिए संभव है और न आलोचक के लिए।' काव्य के तीन स्वर में यद्यपि वे सर्वाधिक महत्व नाट्य-स्वर को देते हैं, जो निर्वैयक्तिकता की ही परिणति है, लेकिन जब वे शेक्सपीयर की आलोचना करते हैं तो कहते हैं "यदि आप शेक्सपीयर को पाना चाहते हैं तो वह आपको केवल उन पात्रों में मिलेगा, जिनकी उसने सृष्टि की है।" इससे स्पष्ट है कि इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत व्यक्तित्व का निषेध नहीं अपितु उसका समर्पण है। वे कहते हैं- "कला संवाद के लिए अनिवार्य है कि कलाओं का अनुशीलन करते समय व्यक्ति सबकुछ का, यहाँ तक कि अपने वंशवृक्ष का भी समर्पण करके इस कार्य में प्रवृत्त हो।"[7]

इस प्रकार इलियट के निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत भारतीय साधारणीकरण से साम्य रखता है। इसमें व्यक्तित्व का पलायन व्यक्तित्व का निषेध नहीं अपितु वस्तुनिष्ठता के प्रति समर्पण है। इनका वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत निर्वैयक्तिकता की पुष्टि करता है। इलियट 'कला-कला के लिए' का उद्घोष करने वालों की तरह, उसे सामाजिकता, नैतिकता और धार्मिकता के बंधन में नहीं जकड़ते हैं। इस प्रकार इलियट ने कलावादियों,

मार्क्सवादियों और यथार्थवादी समाजवादियों से भिन्न एक संतुलित आलोचना दृष्टि का सूत्रपात किया।

जहाँ तक 'परंपरा की प्रासांगिकता' का प्रश्न है,यह हमारे मस्तिष्क को पुनः सोचने के लिए अवश्य विवश करती है। परंपरा और विरासत के प्रश्न पर टी. एस. इलियट ने कुछ दिलचस्प दलीलें दी हैं; जिनसे पूर्णतया सहमत नहीं हुआ जा सकता है। उनका सुझाव है कि लेखक में एक इतिहास चेतना का होना जरूरी है जो उसे लिखने के लिए बाधित करे। न केवल खुद अपनी पीढ़ी को अपनी हड्डियों में समोकर ही, बल्कि इस भावना के साथ भी कि होमर से लेकर यूरोप का समग्र साहित्य और उसके अपने देश का समग्र साहित्य भी उसके साथ-साथ अस्तित्व रखता है और संव्यवस्था की रचना करता है। यह केवल आंशिक रूप में सत्य है। कारण कि वर्तमान से बाहर अतीत का कोई अर्थ नहीं है और प्रत्येक वर्तमान अतीत को अपनी कसौटी पर परखता है। आलोचक के लिए जो बातें सबसे अधिक महत्व की है वह यह कि यह परख कैसे की जाती है । किन्तु इलियट ने परंपरा के बारे में अपने जिस दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह तत्वतः निष्क्रिय है। कोई भी कवि, पूर्ण रूप से सार्थक नहीं होता। उसका महत्व उसकी सराहना, मृत कवियों और कलाओं के साथ उसके संबंध की सराहना है। अकेले अपने- आप में पूर्ण-रूप से सार्थक नहीं होता । उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता; मुक़ाबले और तुलना अपने - आप में उसका मूल्यांकन के बीच स्थापित करना होगा ।

अतीत और वर्तमान - दोनों के प्रति निश्चय ही यह एक कुत्सित व्यवहार है। यदि इन दोनों के बीच कोई जीवित संबंध है तो यह 'मुक़ाबले और तुलना' का संबंध नहीं है। यह सच है कि हम प्रत्येक कवि को सम्पूर्ण के एक अंश के रूप में ही परखते हैं, किन्तु एक ऐसे अंश के रूप में नहीं, जिसे उनकी विरासत ने बांध कर निरा निष्क्रिय बना दिया है। कवि या उपन्यासकार मृत संपत्ति का उत्तराधिकारी नहीं है। वह अतीत का उपयोग करता है- न केवल खुद अतीत को ही बदलने के लिए (अपनी निजी उपलबद्धियों द्वारा), बल्कि वर्तमान को भी बदलने के लिए। संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे हमें जीवन के अभाव को गहरा बनाने के काम में लाना है। वह केवल सौंदर्यानुभूति में डूबने-उतरने की चीज नहीं है।

इसमें संदेह नहीं है कि इलियट इस बात को आंशिक रूप में समझते हैं। कारण कि अपनी भूमिका में ही उन्होंने स्वीकार किया है कि शेक्सपीयर के मुकाबले में दांते को अधिक पसंद करने के परिणामस्वरूप उन्हें संस्कृति को जीवन के एक ऐसे सक्रिय अंग के रूप में देखना पड़ता है जिसमें नैतिकता, धर्म और राजनीति का भी प्रवेश है। 'परंपरा' शीर्षक लेख में लिखते हुए इलियट कहते हैं-प्रत्येक नई कृति अतीत की कृतियों की समूची मौजूदा व्यवस्था को चाहे कितने ही आंशिक रूप में क्यों न हो, बदलती है। बिल्कुल ठीक, किंतु वे कौन-सी शक्तियाँ हैं जो इस परिवर्तन के पीछे हैं? यह परिवर्तन किस प्रकार होता है?

हम अतीत को उसी रूप में परखते हैं जिस रूप में हमें जीवन उसे परखने के लिए बाध्य करता है और हमारा यह जीवन न केवल हमारी विरासत से ही, बल्कि हमारे अपने समय के वर्ग-संघर्षों तथा आवेगों-आवेशों से भी निर्धारित होते हैं। हम केवल अतीत को ही नहीं देख सकते। हमें पहले वर्तमान को देखना है, जो सदा परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजरता रहता है।

संदर्भ सूची

1. नामवर सिंह(प्रधान संपादक), आलोचना (पत्रिका), (विचारधारा और सौंदर्यशास्त्र), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पृ.- 21
2. टी. एस. इलियट, द सेक्रेड वूड : एसेज ऑन पोएट्री एंड क्रिटिसिज़्म, मेथुएन एंड को, लंदन, सं.- 1950, पृ.- 49
3. वही, पृ.- 53
4. वही, पृ.- 50
5. वही, पृ.- 58
6. निर्मला जैन व कुसुम बाँठिया, पाश्चात्य साहित्य-चिंतन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-2009, पृ.- 65 (125)
7. डॉ. रामअवध द्विवेदी, साहित्य-सिद्धांत, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना, बिहार, सं.- 1983, पृ.- 54

Concept of 'Tradition' and 'Impersonality' of T. S. Eliot

Dr. Bandana Bharati*

Abstract

In this article, the important concepts of T. S. Eliot such as tradition and impersonality in literature are examined. Eliot has made it clear that the meaning of tradition is not to be taken for orthodoxy or for some blind imitation. In other words, it is the presence of the past and history in the present, in the contemporary poets and writers. He insists on recognizing the relations of a poem or a work to the works of dead poets and artists. He regrets that in our appreciation of authors we hardly include their connections with those living and dead.Tradition is a continuous flow which collects and blends the best experiences of social and cultural life, literature, art and philosophy. Without knowing this continuity in life and tradition, no writer can contribute greatly. If someone is lost in relating only the personal miseries and pain, being forgetful of the sense of tradition, then he will go alienated from the greater ends of poetry. As to impersonality in poetry, Eliot says that poetry needs no expression of one's personal emotions, because the poet happens to be a medium for expressing ideas and experiences which are relevant to poetry. It means that his personal emotions are irrelevant and mostly meaningless, while the meaning of poetry depends more on his depersonalised and objective experiences. Thus in this article, these two important and interrelated concepts of Eliot have been critically discussed.

*Dr. Bandana Bharati, Hindi Officer, Mizoram University, Aizawl
Email Id: bbharti.jnu20@gmail.com